# ज्ञान-वर्तिका

सितम्बर, 2024

3

## सुरेन्द्र चौधरी स्मृति अंक

सितम्बर, 2024 अंक-3

सहयोग राशि : 100 रुपये

# ज्ञान-वर्तिका

हिन्दी विभाग, गया कॉलेज, गया की वार्षिक पत्रिका

**संरक्षक**
प्रधानाचार्य, गया कॉलेज, गया
**प्रधान सम्पादक**
डॉ. राम उदय कुमार
विभागाध्यक्ष, हिन्दी, गया कॉलेज, गया
**सम्पादक**
अतुल कुमार सिंह
स्नातकोत्तर चतुर्थ अध्ययनक्रम
**परामर्शदाता**
डॉ. अभय नारायण सिंह
डॉ. आनंद कुमार सिंह
डॉ. सोनू अन्नपूर्णा
डॉ. श्रीधर करुणानिधि
डॉ. जितेन्द्र कुमार
डॉ. रवि कुमार
डॉ. प्रियंका कुमारी
**कवर**
हिम्मत सिंह
**आंतरिक साज-सज्जा**
उदय कुमार
**रेखांकन**
ओमप्रकाश गुप्ता
**विशेष सहयोग**
अरुण नारायण, साकिब अशरफी
**सम्पादकीय कार्यालय**
हिन्दी विभाग, मानविकी भवन, गया कॉलेज, रामपुर, गया, पिन-823001
मोबाइल 9430055338
**प्रकाशक**
हिन्दी विभाग, गया कॉलेज, गया
**मुद्रक**
विकास कम्प्यूट एंड प्रिंटर्स, मकान नंबर 33, सेक्टर ए- 5/6, यूपीएसआईडीसी एरिया, ट्रोनिका सिटी लोनी गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश

■

## विषय-सूची

**संपादकीय-** 03

**खंड-1**

**रचनाकर्म- सुरेन्द्र चौधरी**
परिचय 05
मेरे आलोचक का जन्म- सुरेन्द्र चौधरी 06
रेणु का यथार्थवाद और मैला आंचल की नाटकीयता- सुरेन्द्र चौधरी 12
समकालीन कहानी : सच और झूठ के दायरे में- सुरेन्द्र चौधरी 21

**संस्मरण /व्यक्ति चित्र**
अथातो सुरेन्द्र जिज्ञासा- रामनरेश पाठक 27
एक साहित्यिक यात्रा- सुरेन्द्र चौधरी के साथ- नर्मदेश्वर 31
सुरेन्द्र दा : सख्त जान दरख्तों पर फूल- शैवाल 35
अभी तो बहुत काम करने थे- प्रेमकुमार मणि 38
क्षितिज पर फैली हुई सुबह की लालिमा- सत्येन्द्र कुमार 41

**आलोचना/आलेख**
सुरेन्द्र चौधरी की पुस्तक 'हिन्दी कहानी : प्रक्रिया और पाठ' में चयनित पाठ एक विवेचन- उदयशंकर 43

**खंड-2**

**कहानी**
**ग्रहण- चंद्रकिशोर जायसवाल** 51
समीक्षा
ग्रहण : जीवन के महीन रेशों के बीच यथार्थ की पड़ताल- अतुल कुमार सिंह 57
**कोरोना- नंदकिशोर नंदन** 60
समीक्षा
विशिष्ट संवेदना की कहानी- मधुप कुमार 62
**कंघी- नर्मदेश्वर** 64
समीक्षा
प्रेम का प्राणलेवा आकर्षण- गोपाल प्रधान 68
**जोगी बाबा का आश्रम- प्रह्लाद चंद्र दास** 70
समीक्षा
धर्मांधता के स्याह पक्ष का उद्‌भेदन करती कहानी- कर्मानंद आर्य 77
**जलवा- अवधेश प्रीत** 79

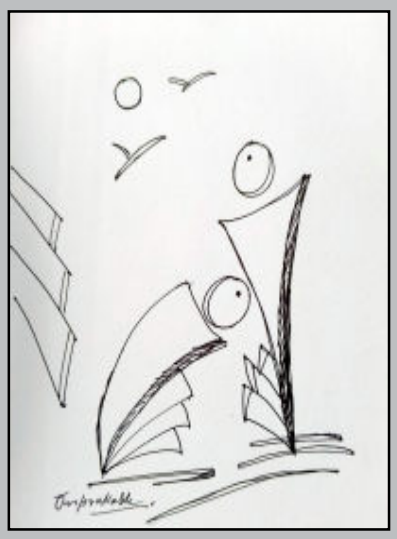


समीक्षा
मिथ्याभिमान का वीभत्स प्रदर्शन एवं राजनीतिक- सामाजिक
विद्रूप- राम विनय शर्मा 85
**कठपुतली का नृत्य- संतोष दीक्षित** 88
समीक्षा
कहानी का नया प्लॉट- पंकज चौधरी 93
**एलियन सरीखे- प्रभात कुमार** 94
समीक्षा
बाढ़, बुढ़ापा और विस्थापन की त्रासदी रचती कथा- अरुण नारायण 97
**परो भगत की सेंचुरी- दीर्घ नारायण** 99
समीक्षा
भारतीय लोकतंत्र की अंधेरी सुरंग का वृत्तांत- परम प्रकाश राय 104
**लेबर चौक : ठाकुर धीरेंद्र बहादुर सिंह की प्रेम कहानी- टेकचंद** 106
समीक्षा
लेबर चौक : अंतरजातीय प्रेम की दास्तान- आकाश कुमार 113
लौटना हमेशा अच्छा नहीं होता... ट्विंकल रक्षिता 117
**गुमनाम गली का ठिकाना- श्रीधर करुणानिधि** 119
समीक्षा
गुमनाम गली का ठिकाना के बहाने मौजूदा पारिवारिक संबंधों
की पड़ताल- डॉ. कंचन कुमारी 122
**पर तुम्हारा क्या- प्रिया कुमारी** 124
समीक्षा
शायद प्रेम ही था.. रवि कुमार 126
**लघुकथा**
विषय- ज्ञानी कुमार 127
कलंक- उत्तम कुमार 128
मैं भी इंसान हूं- नितिश कुमार 118
**पुस्तक समीक्षा**
किस-किस से लड़ोगे- पंकज चौधरी की पुस्तक की समीक्षा- चितरंजन भारती 129
**रिपोर्ट**
सांस्कृतिक गतिविधियों का वैभव रचता हिन्दी विभाग- डॉ. सोनू अन्नपूर्णा 132


■

## दो शब्द

प्रोफेसर सुरेन्द्र चौधरी गया कॉलेज के हिंदी विभागाध्यक्ष भी थे। उनके निर्देशन में मैंने शोधकार्य शुरू किया था। जब अध्यक्ष बना तो गुरु स्मरण कर्तव्य ठहरा। सो, उनकी स्मृति स्वरूप विभागीय पत्रिका का यह अंक आपके सामने है।

प्रो. चौधरी प्रख्यात कथा आलोचक भी थे। स्वभावतः इस अंक को कथा केंद्रित होना था। कथा समीक्षा न हो तो फिर गुरु स्मरण अधूरा रह जाता। सो, वह भी है। प्रो. चौधरी पर समुचित सामग्री है। उनका भी और उनपर संस्मरण, जिनके बीच उन्हें जीने का मुझे भावभरा अवसर मिला।

अंत में कह दूं कि इसमें जो भी बढ़िया है, वह रचनाकारों-समीक्षकों, मेरे विभागीय सहयोगियों और विद्यार्थियों का परिश्रम है। जो कमियां हैं, वह मेरी ही हैं।

**सब का आभार!**

**राम उदय कुमार**

■

## सम्पादकीय

'ज्ञान वर्तिका' पत्रिका का यह तीसरा अंक है। यानी 14 सितंबर को पूरे तीन वर्ष होने को हैं। हर साल की तरह इस साल भी 14 सितंबर को हिंदी दिवस के उपलक्ष्य में पत्रिका का पुनः विमोचन/अनावरण होगा। मुझे पहली बार संपादन के कार्य को नजदीक से देखने का अवसर मिला। यह कार्य एकाग्रता के साथ श्रम की मांग करता है। हालांकि श्रमसाध्यता और एकाग्रता लगभग सभी कार्यों में चाहिए।

गया कॉलेज, गया के हिन्दी विभाग की रचनात्मकता को साकार करने में पूर्व के विभागाध्यक्ष डॉ. आनंद कुमार सिंह और डॉ. अभय नारायण सिंह सर और वर्तमान विभागाध्यक्ष डॉ. राम उदय कुमार ने आगे बढ़ाने के संकल्प को दुहराते हुए छात्र-छात्राओं को निरंतर प्रेरित करने का काम किया है। हमारा विभाग और भी नई ऊंचाइयों को छू सकता ...लेकिन इसमें छात्र और शिक्षक दोनों को अपने-अपने कदम एक-दूजे की ओर बढ़ाना होगा तो..बहुत संभव है और भी कई कार्यक्रम संभव हो सकते हैं। हिंदी विभाग में हर शनिवार को कोई न कोई कार्यक्रम आयोजित किया जाता रहा है।

हर बार की तरह इस बार भी बहुत से रचनाकारों के परिश्रम और उनके रचना उद्देश्यों को आप देख और पढ़ पाएंगे। आज साहित्य और साहित्यकार से समाज को ढेरों अपेक्षाएं हैं। पाठक वर्ग को ज्यादा-से-ज्यादा अपने से जोड़ने की जरूरत है ताकि लोग साहित्य को ठीक ठीक समझ सकें। उसे यूं कविता कहानी कहकर या सिर्फ मनोरंजन वाली वस्तु बताकर उससे किनारा न किया जाना चाहिए। वर्तमान समय में देखा जा सकता है कि हमारा समाज तेजी से बदल रहा है और इससे निःसंदेह रचनाकारों के सामने नई नई चुनौतियां भी प्रस्तुत होंगी। कोरोना काल से लेकर अब तक चीजें ऊबड़-खाबड़ ढंग से चलती हुई नज़र आती हैं। बदलाव के लिए बहुत जरूरी है कि स्वयं ही आगे आया जाए, समाज के भय से खुद को किसी और दिशा में न मोड़ा जाए और न ही बदलाव का सिर्फ छद्म भेष धारण किया जाए। उदाहरण के लिए प्रेमचंद को देखा जा सकता है कि वे कैसे खुद आगे बढ़कर बदलाव को नई दिशा प्रदान करते हैं।

समाज में हत्या, लूट, बलात्कार तमाम तरह की घटनाएं हो रही हैं। लेखक संघ और बुद्धिजीवी वर्ग से हमारी आरंभ से ही बड़ी अपेक्षाएं रही हैं। हम हमेशा से सोचते हैं कि वे बड़े बदलाव लाने में सक्षम हैं, ला सकते हैं, पर ये बुद्धिजीवी वर्ग सिद्धांतवादी बनकर कुंद होते जा रहे हैं। वे अपने वर्ग संघ में ही सिमटकर रह जाते हैं। वे यदि वास्तव में बदलाव चाहते तो सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, कुंठा आदि में आमूलचूल परिवर्तन लाने की कोशिशें करते। होड़ से बचकर अपनी लीक बनाते। स्वयं बदलाव के लिए आगे आते ठीक उसी तरह जैसे सूर्य आगे बढ़ते हुए रोज नई सुबह लाता है।

युद्ध को समाधान के तौर पर नहीं देखा जा सकता। बल्कि उसे अवसरवाद की तरह देखा जाना चाहिए। जहां हथियार निर्माता देश अपने हथियारों को परखने-जांचने के लिए उस भूमि देश का लैब की तरह

इस्तेमाल करता है और आग भड़का कर तथा खूब सारे हथियार बेचकर मोटा मुनाफा कमाता है। बातचीत का संयत तरीका बहुत जरूरी है ताकि युद्ध को हर संभव टाला जा सके। जान माल की कम से कम क्षति हो। ऐसा लगता है कि पूरी दुनिया आज जैसे किसी ज्वालामुखी पर बैठी हुई नज़र आ रही है। उसके फटते ही जैसे मानव सभ्यता का लोप हो जाएगा। सबको अपने अपने देश की जीडीपी की पड़ी है, वर्ग, जाति बचाये रखने की पड़ी है, पर यह कोई नहीं देख पा रहा है कि धरती पर लगभग सारी चीजें शापित हैं और उससे सभी प्रभावित हो रहे हैं किसी-न-किसी रूप में।

दुनिया युद्धों की विभीषिका पहले भी देख-झेल चुकी है। प्रथम विश्व युद्ध हो या द्वितीय विश्व युद्ध या वे युद्ध जो वर्तमान समय में भी किसी क्षेत्र विशेष को लेकर भी लड़े जा रहे हैं। यह कब विश्व युद्ध की शक्ल अख्तियार कर सकता है कोई ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगा सकता। यदि कोई मिसाइल भटककर दूसरे देश पर जा गिरे तो आत्मसम्मान की लड़ाई कहकर युद्ध में कूद पड़ेंगे और फिर तीसरे विश्व युद्ध की घंटी बज जायेगी। इजरायल और हमास, ईरान अमेरिका, रूस-यूक्रेन, आर्मेनिया अजरबैजान, उत्तर कोरिया दक्षिण कोरिया, भारत पाकिस्तान, तुर्की ग्रीस, चीन और....सभी लगभग युद्ध की आग में जल रहे हैं और भारत जो खुद को बुद्ध का देश बार-बार कहता है, गीता और शांति की बात करता। यह भी बड़ा छद्म रूप है उसका। आज भारत के अलावे कितने प्रकार के शांति संगठन बनाये गए हैं वे सब शांति की माला लेकर जाप कर रहे हैं कोई जमीनी स्तर पर काम नहीं करना चाहता है उस राष्ट्र संघ की तरह, जो 1920 में बना था, हमारे यहां के राष्ट्रपति भी...ऐसे तमाम तरह की संस्थाएं असफल साबित हो रही हैं...(और हर वह हथियार उत्पादक देश पूंजी इकट्ठा करने के लिए दुनिया के किसी-न-किसी देश को एक दूसरे के खिलाफ भड़काने का काम कर रहा है और मुनाफा रूपी लालच की जीभ लंबी करता जा रहा है।) लेखकों की कितनी भूमिका रह गई है पता नहीं। हमें लेखकों की भूमिका को पूर्णतः ख़ारिज नहीं करना चाहिए पर....लेखक अब सभाओं में और जनता के बीच एक सुगंधित फूल की तरह बनकर आते हैं जिसे जनता टेस्ट की तरह सूंघ कर छोड़ देती है। उनपर जैसे भरोसा नहीं! वो उन्हें जानने के बाद उस स्थिति पर पहुंचते हैं जहां कथनी और करनी, नदी के दो पाटों की तरह दिखलाई देती है।

इन दिनों बंगाल भी सुर्खियों में है, चाहे इसका कारण राजनीति हो, हत्या या बलात्कार जैसे घृणित कार्य। जूनियर डॉक्टर हड़ताल पर बैठे हैं। ओछी राजनीति करने वालों ने देश की क्या दुर्दश की है सब भलीभांति जानते हैं। हम सभी जानते हैं कि बंगाल शुरू से ही पठन-पाठन का, नवजागरण...आदि का केंद्र रहा है। वहां के लोग काफ़ी जागरूक और सजग हैं पर यह क्या अब बंगाल कोई दूसरी राह पकड़ना चाह रहा है? 'वी वांट जस्टिस' के नारे जनता लगाती रहती है पर सरकारें तो भैंस की तरह मस्ती में पागुर करती रहती है। खैर हमारे देश की यह दुर्दशा जग जाहिर है। लोग जानते हैं गत वर्ष पूर्व केरल में एक गर्भवती हथिनी के संभवतः सूंड में किसी ने बम रख दिया था। यह कतई नहीं है कि बिहार जैसे पिछड़े राज्यों में घृणित कुकृत्यों को अंजाम नहीं दिया जाता। आपको पता है कि बिहार में कोई कंपनी क्यों नहीं आना चाहती है...ये जो राज्य हैं शिक्षा के क्षेत्र में काफी प्रगतिशील हैं पर देखिए इनका हस्र...यह अशिक्षित समाज और शिक्षित समाज पर बारी-बारी से आरोप मढ़कर बच निकलने की बात नहीं है। संभव हो सके तो उसे बदलने में अपनी भूमिका अदा की जानी चाहिए। जो सुन समझ सकते हैं पहले इन्हीं लोगों को अपनी बात समझाई जानी चाहिए और उन्हें भी ऐसा करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। एकाएक तो परिवर्तन नहीं दिखेगा, परंतु परिवर्तन की कोई किरण नजर जरूर आ जायेगी। यह कार्य कठिन जरूर है। हम और आप दोनों यह कह सकते हैं कि कुछ भी असंभव नहीं।

दुनिया पूंजीवाद का तानाशाह रूप लंबे समय से देखती आ रही है। यदि हम भी परंपरावादी बने रहे तो बदलाव की गुंजाइश न्यून हो जायेगी। गोष्ठियों में आमूलचूल परिवर्तन होना चाहिए, उसे किसी खास विशेष जगह में कैद करके रखना सही नहीं जान पड़ता है। डर है कि कहीं यह भी वैदिक शिक्षा की तरह ही किसी कोने में...अपनी बेहतरीन चीजें आम लोगों तक पहुंचाई जाएं ताकि वे भी वर्तमान की भ्रमित हवा एवं भेड़ चाल को ठीक ठीक पहचानते हुए खुद को गुमराह होने से बचा सके और दूसरों की भी समय रहते मदद कर सकें..

ज्ञान वर्तिका का तीसरा अंक जिस विद्वान प्रसिद्ध रचनाकार पर केंद्रित है वह हैं सुरेंद्र चौधरी जी, जो वर्षों उपेक्षित रहे हैं। फिर भी उन्होंने अपनी उपेक्षा की परवाह किये बिना अपने आलोचना-कर्म को जारी रखा। वे बेबाक रहे ...चापलूसी से बचे रहे... बच्चों के करीब रहे उन्हें उचित रास्ते सुझाते रहे..उनका जीवन बिल्कुल फक्कड़ों के करीब रहा, पर वे शिक्षा के साथ जीवनपर्यंत जुड़े रहे।

मुझ जैसे नौसिखिये को सम्पादकीय का हिस्सा बनाने के लिए हिंदी विभाग के सभी शिक्षक गणों को तहे दिल से आभार एवं सभी रचनाकारों को ज्ञान वर्तिका के तीसरे अंक में रचनाएं भेजने के लिए तहे दिल से शुक्रिया।

त्रुटियों के लिए क्षमा चाहता हूं।

**अतुल कुमार सिंह**
स्नातकोत्तर
चतुर्थ अध्ययनक्रम

■

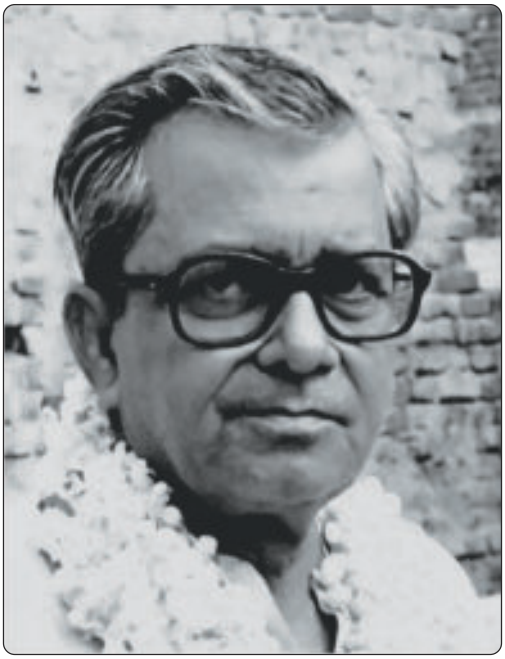

# सुरेन्द्र चौधरी

**(13 जून, 1933 - 09 मई, 2001)**

गया में जन्मे सुरेन्द्र चौधरी की आरंभिक से बी.ए तक की शिक्षा इसी शहर में हुई। गया कॉलेज से हिंदी विषय में उन्होंने बी.ए.(ऑनर्स) किया और पटना विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.ए. किया। 1961 में वे पटना वि.वि. से नलिन विलोचन शर्मा के निर्देशन में प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक संदर्भ' विषय पर पी.एच.डी. कर रहे थे, लेकिन श्री शर्मा के अचानक गुजर जाने के बाद उनका यह शोध पूरा नहीं हो सका। अंततः 8 वर्ष बाद मगध विश्वविद्यालय से 'अस्तित्ववाद और समकालीन हिंदी साहित्य' विषय पर पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

गया कॉलेज, गया के वे स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग में आचार्य एवं अध्यक्ष रहे। निरंतर सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय रहते हुए कथा-आलोचना को नया आयाम दिया। जून, 1959 से विधिवत लेखन-कार्य आरंभ किया।

**प्रकाशन**

1. हिन्दी कहानी : प्रक्रिया और पाठ (प्रथम संस्करण1963) (संवर्द्धित संस्करण 1995) राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली
2. फणीश्वरनाथ रेणु : (विनिबंध, 1987) साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली
3. इतिहास : संयोग और सार्थकता (सम्पादक : उदयशंकर, 2009),अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद
4. हिन्दी कहानी : रचना और परिस्थिति (सम्पादक : उदयशंकर, 2009),अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद
5. साधारण की प्रतिज्ञा : अंधेरे से साक्षात्कार (सम्पादक : उदयशंकर, 2009), अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद

■

# मेरे आलोचक का जन्म

सुरेन्द्र चौधरी

किसी विचार-व्यवस्था के लिए मैंने लेखन आरम्भ किया हो ऐसा दावा किए बगैर भी कहना चाहूंगा कि मेरी लड़ाई एक व्यवस्था के लिए थी। याद आता है कि सन् 1951 में अपने पहले ही लेख में इस प्रश्न से मैं टकराया था। जैनेन्द्र जी की एक लेखमाला 'आदर्श क्या, संघर्ष कि समन्वय- 'साहित्य सन्देश' में प्रकाशित हो रही थी जो उस समय की सबसे बड़ी प्रतिष्ठित आलोचनात्मक पत्रिका थी। मेरा लेख संघर्ष के पक्ष में और समन्वय के विरोध में लिखा गया था। तब मैं इन्टरमीडिएट का विद्यार्थी था। कॉलेज और नगर में इसकी नोटिस ली गई। हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. वासुदेवनन्दन जी ने जानना चाहा था कि क्या यह लेख मेरा ही लिखा है।

उत्साह में व्यवस्था की परवाह नहीं होती। अगर वह किसी का विरोध करता है तो किसी को चुनता भी है। मैंने संघर्ष चुना था। संघर्ष आज भी जारी है। यह संघर्ष अपने आप से भी चलता है। साहित्य और विशेषतः आधुनिक साहित्य की मेरी समझ वस्तुतः मानव-मुक्ति और राष्ट्रीय मुक्ति की उस पृष्ठभूमि में बनी जिसमें एक नई संस्कृति का जन्म हुआ था। उसमें संघर्ष की अन्तर्ध्वनियां मेरे युवा मन ने सुनी थीं और मेरी चेतना ने उसे अपना आदर्श बनाया था। अपने पहले लेख में यह प्रस्तावना आकस्मिक नहीं थी।

ये वर्ष मेरी बहु-उन्मुखता के वर्ष थे। पढ़ाई, छात्र संगठन, फुटबॉल और राजनीति में एक साथ रुचि रखने के कारण लेखन नहीं कर पा रहा था। पढ़ना जारी था। यूरो-इंडियन चिन्तन से स्वतंत्र होकर हमारे लिए कला-रूप, सामाजिक संगठन, विश्व-दृष्टि, और क्रान्तिकारी नैतिकता सम्बन्धी प्रश्न नया दबाव पैदा कर रहे थे। यह सब बहुत सचेत रूप से हो रहा था, चाहे बहुत व्यवस्थित न भी रहा हो। प्रगतिशील लेखक संघ 1953 में नए दौर में प्रवेश कर रहा था। मैं उसके जलसों में पहुंच जाता था। अगले दो वर्ष मेरे आलोचक के निर्माण में अहम भूमिका पूरी करते हैं।

आधुनिकता और आधुनिकीकरण के पूरे दौर में अपनी पीढ़ी को समकालीन मानने का सौभाग्य हमें प्राप्त है। साहित्य के अलावा मेरी रुचि दर्शन और अर्थशास्त्र में थी। साहित्य का प्रश्न सांस्कृतिक प्रश्न बन गया था। गोष्ठियों में स्व. राहुल जी के मुंह से यह मैं कई बार सुन चुका था। वे इसे भाषा से भी जोड़ रहे थे। स्वतंत्र भारत के सन्दर्भ में यह सहज ही अनुमेय है।

एम.ए. में मैं स्व. नलिन विलोचन शर्मा जी के सम्पर्क में आ गया था। वे घोषित रूप से मार्क्सवाद-विरोधी आलोचक थे। मेरी अभिरुचि और साहित्यिक रुझान का उन्हें पता था। उन्होंने मुझे नए मार्क्सवादी आलोचकों का साहित्य पढ़ने को दिया। यही नहीं यूरोप-अमेरिका के क्लासिक कथाकारों की रचनाएं पढ़ने को दीं। जैनेन्द्र उनके प्रिय लेखक थे। समकालीन कहानीकारों पर कई उत्तेजक रायें देते रहते थे। उनकी कृपा से मुझे लुकाच, हाउजर, काडवेल, वाल्टर-बेंजामिन आदि का प्रायः अनुपलब्ध साहित्य पढ़ने को मिला। निश्चित रूप में तब मैं इनकी पारस्परिक असंगतियों को समझ नहीं पा रहा था। मार्क्सवादियों के बीच ढेर सारी सांस्कृतिक समस्याओं पर विचार आरम्भ हो चुका था। स्व. नलिन जी की कृपा से मुझे वल्गर सोशियालॉजी पर सोवियत यूनियन में चल रही बहस की एक पूरी पुस्तक उपलब्ध हो गई थी।

निश्चित ही अत्यन्त सम्वेदनशील मार्गों से मेरा प्रशिक्षण हो रहा था। सन् 1955-56 में मैं नामवर जी के व्यक्तिगत सम्पर्क में आया। मेरे वर्तमान का निर्माण उनके हाथों हुआ है। वैसे कई व्यावहारिक मुद्दों पर मैं उनकी कार्य प्रणाली से अलग भी रहा हूं। मैंने उन दिनों गया को वैचारिक हलचलों का केन्द्र बना रखा था। अपने कॉलेज की हिन्दी परिषद् के अधिवेशन राष्ट्रीय स्तर पर मैंने किए। श्री अज्ञेय और डॉ. रामविलास जी को छोड़कर प्रायः सभी इस मंच पर आए। श्री यशपाल, जैनेन्द्र, महादेवी वर्मा, डॉ. भगवत शरण उपाध्याय, भैरव प्रसाद गुप्त, डॉ. प्रकाश चन्द्र गुप्त, त्रिलोचन के साथ-साथ राजा राधिकारमण, नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार, डॉ. जगदीश गुप्त, नामवर सिंह, मार्कण्डेय आदि तमाम लोगों का सहयोग मुझे प्राप्त हुआ।

1955-60 के बीच हिन्दी आलोचना एक नए दौर में प्रवेश कर रही थी। मैंने छिटपुट निबन्ध इस दौर में खूब लिखे। 'लहर', 'कल्पना', 'ज्योत्स्ना' और साठ के बाद 'जनयुग' और 'आलोचना' में 'लहर', 'आधार' आदि पत्रों के साथ लिख रहा था। 'लहर' से सम्पर्क में स्व. मित्र राजकमल के माध्यम से आया था। स्व. प्रकाश जैन और मनमोहिनी ने और 'आलोचना' में डॉ. नामवर सिंह ने मुझे काफी छापा। आज भी इनका ऋण मुझ पर है। नामवर जी के कारण मेरी आलोचना दृष्टि का विस्तार हुआ। उन्हीं दिनों में विदेशी